SJIF 2016 : 4.44
ISSN: 2348-3083
UGC APPROVED SR. NO. 48612
An International Peer Reviewed & Referred
SCHOLARLY RESEARCH JOURNAL FOR
HUMANITY SCIENCE & ENGLISH LANGUAGE

आधुनिक भारतीय चित्राकला में विरूपण

सीमा, Ph. D.

सहायक प्रोफ़्रफेसर, ह्व्द्र के्द्र वि्द्र महेन्द्रगढ्ढ

Scholarly Research Journal's is licensed Based on a work at www.srjis.com

कला अपने समय तथा समाज और उसकी प्रगति का प्रतिबिम्ब होती है। कला का स्वरूप सदैव परिवर्तित होता रहा है फिर चाहे वह प्राचीन कला हो या आधुनिक कला। रूप केवल अभिव्यक्ति का माध्यम है। कलाकार प्रकृति से प्राप्त वस्तुओं को अपनी कल्पना के अनुरूप ढालता है या कुछ विलक्षण प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्ति देता है वह कला की दृष्टि से उसकी शैली बन जाती है। शैलियाँ प्राचीन काल में भी थीं और आज भी हैं किन्तु प्रत्येक कलाकार की शैली भिन्न होती है।

'अभिव्यक्ति मनुष्य अपने तौर–तरीकों, भावनाओं तथा विचारों की करता है और सभी कलाकार यही करते हैं अन्तर है शैली का। अभिव्यक्ति का रूप तो करीब–करीब एक समय तथा समाज में एक–सा होता है पर उसे व्यक्त करने के लिए अनेकों कलाकार विभिन्न शैलियों का प्रयोग करते हैं।'[1]

कला का उद्देश्य मुख्यतः या तो उपयोगी वस्तुओं का निर्माण करना होता है या सौन्दर्यानुभूति के विषय बनाना होता है जिन्हें सारतः शिल्प तथा प्रायोगिक कलाओं के नाम से जाना जाता है।

कला के विषय में अनेक विद्वानों ने समय–समय पर अनेक परिभाषाएँ दी हैं। संक्षेप में चाक्षुष कलाओं को मानव अनुभवों का विशेष सम्प्रेषण माना जा सकता है जो अन्तराल के रूप में माध्यम से प्रगट होता है। यह एक सार्वभौमिक क्रिया है जो हर युग, हर स्थान, हर समय में पाई जाती है चाहे वह अभिव्यक्ति के रूप में हो, सम्प्रेषण के रूप में या मनोरंजन के रूप में। सौन्दर्य सृजन के माध्यम से रस के स्त्रोत तक पहुंचने का मार्ग कला की साधना माना गया है।

कला के इतिहास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि कला के उद्भव से लेकर आधुनिक काल तक यह निरन्तर आरोह–अवरोह के साथ आगे बढ़ती रही। विभिन्न शैलियाँ आरम्भ और अस्त हुई, अनेक रूप –परिवर्तन हुए। पाषाण युगों में मानव का सांस्कृतिक विकास दृष्टिगोचर होने लगता है साथ ही शिलाओं तथा प्रस्तर के हथियारों आदि पर अंकित आकृतियों से उनकी सौन्दर्यानुभूति के विकास के प्रमाण भी मिलते है। ताम्र, लौह और ऐतिहासिक युग में मानव बड़ी शीघ्रता से सांस्कृतिक विकास की ओर अग्रसर होता है।

---

[1] 'kDy] jkepUn& ^dyk vkj vk/kfud iofÙk;k¡*] jktf"k i : "kkÙkenkI V.Mu] fgUnh Hkou] y[kuÅ] 1974] i- 180A

मध्यकाल कला के विकास की दृष्टि से प्राचीन काल की तुलना में कुछ कम प्रभावशाली प्रतीत होता है। पुनरूत्थान काल का मानव नित नवीन क्षेत्रा में पदार्पण करता है। मध्यकाल के धार्मिक व सामाजिक मूल्यों का स्थान मानवतावादी तथा स्वतंत्रा व्यक्तिवादी मूल्य ले लेते हैं।

अपने चारों ओर सभी कुछ सौन्दर्यमय देखने की कामना ने ही प्रत्येक उपयोगी वस्तु को रमणीय तथा शोभायुक्त बनाने की प्रेरणा दी। वही संस्कार सामान्य जन तक आते–आते सरलीकृत होकर लोककला के रूप में सामाजिक परम्पराओं में स्थापित होते चले गए।

कलात्मक विकास के लिए लोककला सदैव कलाकारों को उत्प्रेरित करती रही है। इससे उनका अलग ही अपनत्व है। यह लोक कला की महत्वपूर्ण उपयोगिता है कि इसमें राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता का आभास मिलता है जबकि शास्त्रीय कला इहलौकिक और व्यक्तिपरक होती है तथा रचयिता लोकेष्णा को अधिक महत्व देता है।

लोक कला की शैली पर वर्तमान युग में शास्त्रीय कलाओं तथा मनुष्य के रहन–सहन का बहुत प्रभाव पड़ा है। इसी कारण प्राचीन तथा आधुनिक लोक–कलाकृतियों में काफी अन्तर आ गया है।

समग्र रूप में लोक कला प्रायः आलंकारिक अथवा ज्यामितीय ही होती है। इसके विपरीत शास्त्रीय कला में यथार्थवादी तथा परिष्कृत रूपों का प्रयोग होता है। लोक कला जहाँ रूपों को सहजता से ग्रहण करती है वहीं शास्त्रीय कला रूपों के सम्बन्ध में अनेक प्रयोग करती रहती है। समकालीन अथवा आधुनिक कला कलाकार की प्रयोगोन्मुखी विचारधारा का ही परिणाम है। नित नए अनुसंधानों तथा वैज्ञानिक क्रियाकलापों के द्वारा उसने अनूठे दृश्य संसार का निर्माण किया है।

अनुमानतः 19वीं सदी के उत्तरार्ध में आधुनिक कला आन्दोलन एक गम्भीर रूप धारण कर चुका था। मुग़ल, राजपूत व पहाड़ी शैली की शाखाएं लगभग खत्म हो चुकी थीं। कला सामान्य जन–जीवन पर आधारित हो गयी थी। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य कला शैली के प्रभाव ने भारतीय कला शैली को पूर्णतः परिवर्तित कर दिया। कम्पनी शैली का उदय हुआ। राजा रवि वर्मा भारतीय विषयों को राष्ट्रीय आदर्श के रूप में प्रस्तुत करने में सफल रहे थे लेकिन राष्ट्रीय शैली का विकास करने में उनका योगदान नगण्य ही रहा। ऐसे में अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, ई. वी. हैवेल तथा कुछ अन्य कला प्रेमियों के सहयोग से 'दि इण्डियन सोसायटी ऑफ ओरियंटल आर्ट की स्थापना हुई जिसने भारतीय कला–वैभव की उन्मद सम्पन्नता में झांककर उसके सौन्दर्य का उद्घाटन किया। तत्पश्चात् गगनेन्द्रनाथ ठाकुर, रवीन्द्रनाथ टैगोर और यामिनी राय, अमृता शेरगिल ने भी अपनी स्वतन्त्रा शैली अपनाकर भारतीय कला इतिहास को समृ(किया। इस समय की कला को भारतीय कला या पुनरुत्थान काल भी कहा गया।

पश्चिमी कला की प्रतिक्रिया स्वरूप उभरा बंगाल का कला आन्दोलन परतन्त्रा देशवासियों को कोई मार्ग न दिखा सका। अमृता शेरगिल, यामिनी राय और ठाकुर परिवार के कुछ अन्य कलाकारों ने भारत के भविष्य की कला शैली के लिए पृष्ठभूमि बनाने का काम किया। इन्हीं के समकालीन देश के कुछ अन्य भागों में फैले हुए कलाकारों ने अपनी–अपनी दृष्टि से कला–शैलियों में अनेक प्रयोग किए। कुछ कलाकार दलों के रूप में सामने आए। इनमें से प्रमुख थे– कलकत्ता ग्रुप, प्रगतिशील कलाकार दल, बाम्बे ग्रुप, दिल्ली शिल्पी चक्र और ग्रुप 1890। इन सभी दलों की चित्राण की अपनी–अपनी नीतियाँ थीं।

इन सभी दलों से जुड़े कलाकारों की कला शैलियाँ चाहे भिन्न–भिन्न रही हों किन्तु एक बात निश्चित तौर पर मान्य है कि इन दलों ने भारतीय कला–इतिहास को समृ(करने वाले अनेक कलाकारों को खोज निकाला।

आज कला के अन्तर्गत सौन्दर्यात्मक मूल्य बदल गए हैं। 'प्रभावोत्पादकता के लिए आज का कलाकार अपनी व्यंजनाशक्ति की सीमा का इतना व्यापक विस्तार चाहता है, अभिव्यक्ति वैचित्र्य में वह इतना खो गया है कि वस्तु और रूप विधान को सर्वथा मौलिक ढंग से अनेक रूपों में व्यक्त करने की इच्छा रखता है, भले ही वे रूप निर्जीव और अर्थहीन रेखाओं का विश्रृंखल संघटन मात्रा क्यों न हो।'[2]

आज कला में इन्स्टोलेशन आर्ट, डिज़िटल आर्ट, मिश्रित माध्यम जैसी तकनीकें प्रतिलक्षित हो रही हैं वहीं 'विकृतिकरण' अभिव्यक्ति का एक प्रभावशाली माध्यम बन गया है। विकृतिकरण अर्थात् विरूपण अर्थात विकृति अर्थात् साधारणीकरण की चरम दशा। कला में विकृतिकरण का प्रयोग 'नये प्रयोग' के रूप में हुआ। आधुनिक कलाकार आदिम कला, लोककला व बाल कला से प्रभावित हुए। उनकी कला में सरलता, सपाटता व मधुरता प्रमुख हो गई। यद्यपि विकृतिकरण आदिकालीन चित्राों से लेकर आधुनिक काल तक सरलीकृत आकृतियों के रूप में विद्यमान रहा हैं, किन्तु मुख्य रूप से इसकी पहचान हुई 20वीं सदी के अन्त तथा 21वीं सदी के आरम्भ में। प्रागैतिहासिक काल में आखेट–दृश्यों के अतिरिक्त मानवाकृतियों तथा पश्वाकृतियों को सरलीकृत आकृतियों द्वारा जैसे कि मुख को गोल धब्बों के रूप में तथा हाथ–पैरों को सीधी रेखाओं द्वारा अंकित किया गया। इसी प्रकार विश्व की लगभग सभी प्राचीन व आधुनिक कला शैलियों में विकृतिकरण देखा जा सकता है।

मध्यकाल में भी प्रायः भारतीय कला में सवाचश्म व दो चश्म चेहरों तथा नुकीली नाक, आँखें पास–पास व चेहरे की सीमारेखा से बाहर निकली हुई चित्रित की गई जो कि विकृतिकरण को ही दर्शाती हैं। अपभ्रंश शैली में इस प्रकार का चित्राण विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है।

यूरोपीय कला में सर्वप्रथम माइकेल इंजिलो के चित्रा 'लास्ट जजमेन्ट' में विकृतिकरण देखा गया। उसके बाद एल्ग्रेको, मोदीग्लियानी इत्यादि कलाकारों की आकृतियों में भी विकृतिकरण दृष्टिगोचर होता है परन्तु सही मायने में विकृतिकरण को विकसित करने का कार्य किया उत्तर प्रभाववादियों ने। सेज़ां, वान गोग और गाग्वं की कलाकृतियों में अति विरूपित आकृतियाँ देखी जा सकती हैं।

'घनवाद' विकृतिकरण की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण शैली है। पिकासो, ह्यान ग्रीस, ब्राक इत्यादि कलाकारों ने अपने चित्राों में ज्यमितीय प्रभाव उत्पन्न कर विकृतिकरण को बल दिया। इसके पश्चात् अभिव्यंजनावाद तथा अतियथार्थवाद में अभिव्यक्ति के लिए नवीन रूप विधानों का निर्माण किया गया। साल्वाडोर डाली इस विषय में एक सशक्त उदाहरण है।

आकृति चित्राण के अतिरिक्त दृश्य–चित्राण तथा वस्तु–चित्राण में भी विकृतिकरण किया गया। दृश्य–चित्राण में विकृतिकरण के लिए मुख्य रूप से प्रभाववादियों का उल्लेखनीय योगदान रहा। माने, मोने, पिस्सारो, सिसली, रेनोआ इत्यादि कलाकारों ने अपने प्रकृति–चित्राों में आभासीय प्रभाव को दर्शा कर विकृतिकरण की धारा को और अधिक प्रवाहित किया। इनके पश्चात् जार्ज स्यूरा, पाल सेज़ां, वान गॉग, गाग्वं, रेदों, आंरी मातिस, ब्लामंक, देरां, रूओल्त, ड्यूफ़्फ़ी इत्यादि कलाकारों के दृश्य चित्राों में काफ़्फ़ी विकृतिपूर्ण रचनात्मकता दर्शित होती है।

घनवाद में भी प्रकृति की प्रत्येक वस्तु को घनरूप देकर विकृत किया गया। अभिव्यंजनावदी कलाकारों ने दृश्य–चित्राण में भावनाओं को भी स्थान दिया। एडवर्ड मुंख इस शैली का मुख्य कलाकार था जिसके चित्राों में विकृतिकरण देखा जा सकता है।

---

[2] xV] 'kphjkuh& ^Hkkjrh; dyk dh :ij[kk*] idk'ku& bykbV ifCyf'kx gkml fnYyh&6] 1971] i- 189A

19वीं सदी में जर्मन रोमांसवाद का दर्शन मुख्यतः काव्यमय व कल्पनारम्य वातावरण से परिवेष्टित प्रकृति–चित्राों में मिलता है।

ांत्स मार्क, माके व काम्पेन्डोंक ने घनवाद से आगे निकलकर कृत्रिाम प्रकाश, काल्पनिक अवकाश व विचित्रा आकारों की एक निराली वैयक्तिक दुनिया का दर्शन कराया। इसी प्रकार यालेन्सकी, पॉल क्ली, आस्कर कोकोश्का, पिएट मान्द्रियान्, साल्वाडोर डाली, इन तांग्वी, जॉन मीरो, मार्क शागाल, खाइम सुटिन इत्यादि कलाकारों की कलाकृतियों में जो विकृतिचित्राण हुआ वह पश्चिमी कला इतिहास का अभिन्न अंग है।

विकृतिकरण का कला क्षेत्रा में विशेष महत्व है। कला के हर क्षेत्रा में श्रेष्ठ सृजनात्मक अनुभूति को प्राप्त करने की सम्भावना विकृतिकरण में है। इसी के निमित्त प्रारम्भ से वर्तमान समय तक यह किसी न किसी अनुपात में विद्यमान है। आधुनिक भारतीय चित्राकला पर यूरोपीय प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त कलाकारों के मौलिक प्रयोगों के परिणाम स्वरूप विकृतिकरण और अधिक विकसित हुआ। पश्चिम में उद्भूद प्रभाववाद, घनवाद, अभिव्यंजनावाद आदि का प्रभाव भारत के अनेक कलाकारों की कलाकृतियों में देखा जा सकता है।

गगनेन्द्रनाथ टैगोर ने सर्वप्रथम घनवादी शैली में आकारों को विकृति प्रदान की। स्वयं सि(कलाकार रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कलाकृतियों में उनका मौलिक रूप से किया गया विकृतिकरण दृष्टिगोचर होता है वहीं यामिनी राय की कलाकृतियाँ लोक कला से प्रेरित हैं। उनकी कलाकृतियों में जो सरलता व सहजता है वह विकृतिपूर्णता को दर्शाती है। जार्जकीट की आकृतियाँ सरलीकृत तथा ज्यामितीयता का प्रभाव लिए हुए हैं वहीं अमृता शेरगिल के चित्राों में भारतीय विषयों की नवीनताँ तकनीकी नवलता, रेखा की लय, छन्द और अमिश्रित रंगों की सबल दार्ष्टिक चेतना है। एम. एफ़. हुसैन की आकृतियों का विकृतिकरण रेखा प्रधान है। उनकी आकृतिमूलकता ांसीसी प्रभाववाद और घनवाद के साथ–साथ एक समय में गहरी लोकश्रितता तथा भारतीय–मिथकीयता से प्रेरित रही है। सतीश गुजराल की आकृतियों में विकृतिकरण लोक–कला पर आधारित है वहीं रणबीर सिंह बिष्ट की आकृतियों का संयोजन उनके द्वारा प्रयुक्त विकृतिकरण को दर्शाता है। इसी प्रकार विकास भफ्टाचार्य, रामेश्वर ब्रूटा, जोगेन चौधरी, ए. रामचन्द्रन, शैलोज मुखर्जी, एफ़.एन. सूज़ा, तैयब मेहता, के. जी. सुब्रमण्यन्, जतिन दास, जय झरोटिया, गणेश पाइन इत्यादि अनेक कलाकारों ने अपनी कलाकृतियों में विकृतिकरण को विशेष स्थान दिया है। इन सबके अतिरिक्त मोहन सामन्त, सी.जे. अन्थोनीदास, के.सी.एस. पाणिक्कर, जे. सुल्तान अली, ज्याति भफ, रेखा रोड़वित्या, रिनी धूमल जैसे अनेक कलाकारों ने अपने चित्राों में आकृतियों को विरूपित किया।

भारतीय कला जगत में देशज व निजी भाषा को लेकर अनेक कलाकारों ने विकृतिकरण का प्रयोग किया। फ्रिफर चाहे वह आकृति चित्राण हो, दृश्य–चित्राण या वस्तु–चित्राण।

अनेक कलाकारों ने सरलीकृत रूपों की गढ़कर भी अपने चित्राों में विकृति उत्पन्न की। इसके लिए उन्होंने लोक कला, बाल कला तथा आदिम कला जैसी विधाओं का भी सहारा लिया। आज कलाओं में किसी परम्परा का वहन नहीं पाया जाता। इसलिए कलाकार के लिए निजी चित्राभाषा का होना वांछनीय हो जाता है और इसके लिए विकृतिकरण एक बेहतर विकल्प है।

निसर्ग में प्राप्त दृश्य अनुभवों से हटकर मानव निर्मित रूपों की ओर हम नज़र डालते हैं तो हमें एक अलग–सी दुनिया दिखाई देती है। वह है विकृतिकरण की दुनिया। मानवनिर्मित रूप नैसर्गिक रूप पर आधारित होते हुए भी इष्ट भाव उत्पन्न करने के उद्देश्य से कुछ भिन्न

प्रकार से चित्रित किए जाते हैं। हमारे कला इतिहास में ऐसे असंख्य प्रमाण हैं जब कलाकारों ने आकृतियों में रूपांतरण करके उनकी परिस्थिति के अनुरूप उन्हें श्रेष्ठ कलात्मक बिम्बों में परिवर्तित किया है। इसलिए विकृतिकरण का कला–जगत को महत्वपूर्ण योगदान रहा है। विकृतिकरण के बिना कला जगत की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

विरूपण की स्थिति कला–जगत के उर्ध्वाकाश में चमकते सितारे की भाँति है जिसकी रोशनी सदैव विद्यमान थी और आगे भी रहेगी। वस्तुतः बिना विरूपण को अपनाए कला में गहनता नहीं लाई जा सकती। लेकिन यह गहनता महज़ फ़ैशन के तौर पर या लोकप्रिय प्रवृत्ति को अपनाने भर से नहीं आती। उदाहरणस्वरूप मानवाकृति को मनमाने ढंग से विकृत करके या आदिवासी कला के अनुरूप असंयोगात्मक संस्पर्श देकर सन्तोषजनक परिणाम नहीं मिल सकते। अतः आवश्यकता है कि विकृतिकरण की गरिमा को ध्यान में रखकर कलाकृति को सार्थक भाव प्रदान किया जाए।